ग्लोब और बच्चे

प्रकाश कान्त

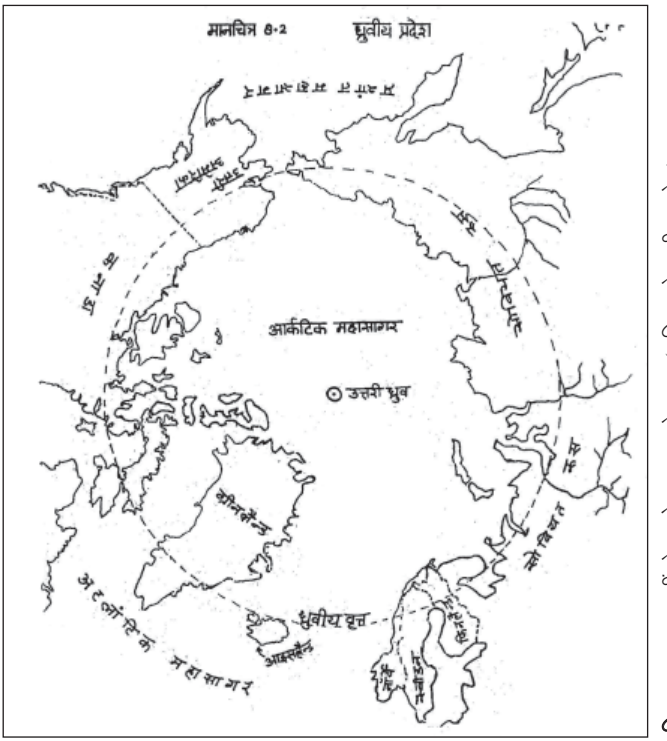

चित्र-1: *कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'एशिया के ध्रुवीय प्रदेश' से लिया गया नक्शा।*

बच्चों को प्राथमिक कक्षा में यह बता दिया जाता है कि हमारी पृथ्वी गोल है। पृथ्वी ही नहीं, चाँद, सूरज वगैरह भी गोल हैं। चाँद, सूरज तक तो बात ठीक है। बच्चे उनके गोल आकार को देखते ही रहते हैं। कम-से-कम सूरज को तो रोज़, और चाँद को पूर्णिमा और उसके एक-दो दिन आगे-पीछे। चाँद के आकार की घट-बढ़ ज़रूर उनके लिए पहेली हो सकती है लेकिन वे उस पर ज़्यादा माथापच्ची नहीं करते। चाँद व सूरज का गोल होना, वे मंज़ूर कर लेते हैं। लेकिन जैसे पहले चर्चा हुई थी, पृथ्वी के गोल होने की बात से वे आसानी-से सहमत नहीं हो पाते। शिक्षक के

कहने पर गर्दन ज़रूर हिला देते हैं लेकिन उनके चेहरे से पता चलता है कि बात उन्हें कुछ हज़म नहीं हो पा रही है। और, चूँकि बिना सहमत हुए मंज़ूर कर लेने का उनका प्रशिक्षण एक तरह से शुरुआती कक्षाओं से ही हो जाता है इसलिए वे ज़्यादा ज़ोर देकर सवाल भी नहीं करते। सवाल उनके भीतर कहीं अटका रहता है। ग्लोब देखने पर यह अटका हुआ सवाल अचानक फिर से सामने आ खड़ा होता है।

ग्लोब का रंग-बिरंगापन, उसका दाएँ-बाएँ घूमना बच्चों को आकर्षित करता है। उसको अपने अक्ष पर झुका देखकर वे रोमांचित होते हैं। खुश भी! सिर्फ सामाजिक अध्ययन शिक्षण की ज़रूरी सहायक सामग्री की तरह ही नहीं, बल्कि कक्षा का शैक्षिक वातावरण आकर्षक बनाने के लिए भी ग्लोब काफी उपयोगी होता है। शिक्षक की मेज़ पर ग्लोब की मौजूदगी ही कक्षा के शैक्षिक माहौल को रुचिकर और आकर्षक बना सकती है। वैसे ग्लोब एक सजावटी वस्तु नहीं है, जैसे कई बार वह संस्था प्रमुखों की मेज़ों पर या अन्य प्रतिष्ठानों के कार्यालयों में पाए जाते हैं। अक्सर वहाँ उनके होने का कोई मतलब नहीं होता। लेकिन, सामाजिक अध्ययन की कक्षा में ग्लोब का होना बच्चों में एक खास तरह का शैक्षिक आकर्षण पैदा करता है, चाहे उस वक्त उसका उपयोग हो रहा हो या नहीं!

नक्शों की ही तरह स्कूलों में सामान्यतः ग्लोब भी नहीं मौजूद होता। वैसे शालाओं के सामने पहले की तरह अब पैसों की कमी की उतनी समस्या नहीं रही। शाला विकास समिति एवं शाला विकास शुल्क के चलते इस समस्या का स्थाई समाधान कर दिया गया है। अब यह बात अलग है कि कई बार शाला विकास के नाम पर उपलब्ध राशि को बच्चों की शैक्षणिक ज़रूरतों को पूरा करने की बजाय अन्य कम ज़रूरी कामों में खर्च कर दिया जाता है। बीच-बीच में शासन भी जब कभी अतिरिक्त राशि उपलब्ध करवाता है तो वह भी ऐसे ही प्रशासनिक कामों में खर्च कर दी जाती है। अगर कभी ग्लोब खरीद भी लिए गए तो पड़े-पड़े खराब हो जाते हैं। माध्यमिक शालाओं में जहाँ कहीं वे उपलब्ध हों भी तो वे इतने छोटे आकार के होते हैं कि शिक्षक की मेज़ पर रखे होने पर पीछे बैठे बच्चों को क्या, सबसे आगे वाले बच्चों को भी दिखाई नहीं देते। बहुत पुराने ढंग के ग्लोब जो ठीक से घूम भी नहीं पाते। ज़ाहिर है, वे वहाँ सिर्फ होने के लिए होते हैं। बाद में जल्दी ही वे शिक्षक की मेज़ से हटकर किसी अलमारी के ऊपर धूल खाने लगते हैं, या टूट-फूट जाते हैं। अक्सर नक्शों की तरह ग्लोब को भी शालाओं में फालतू चीज़ समझा जाता है। यहाँ तक कि गैर-सरकारी या निजी स्कूलों में भी स्थिति कोई

ज़्यादा बेहतर नहीं होती। वहाँ भी नक्शे, ग्लोब वगैरह ज़रूरी नहीं समझे जाते।

शाला का पहला ग्लोब

जब हमारे स्कूल में पहली बार ग्लोब लाया गया तो हमने पाया कि भूगोल ही नहीं बल्कि इतिहास की भी बहुत सारी चीज़ें बताना और समझाना आसान हो गया है। मसलन, ग्लोब की तरह पृथ्वी का भी अपनी धुरी पर (पश्चिम से पूर्व) घूमना और उस कारण दिन-रात का होना, या फिर इतिहास में कोलम्बस की कहानी जिसने सोचा था कि पृथ्वी के गोल होने के कारण अगर पश्चिम दिशा में सीधे चलते जाएँ तो अन्ततः पूर्व में स्थित भारत पहुँचा जा सकता है। हालाँकि, वह सिद्धान्ततः सोच तो सही रहा था लेकिन वह भारत पहुँचता, इसके पहले रास्ते में उसे अचानक उस समय तक अज्ञात रहा महाद्वीप अमेरिका मिल गया जिसे उसने भूल से भारत ही समझ लिया।

बहरहाल, जब मैंने ग्लोब की तरह पृथ्वी के भी गोल होने की बात कही, तो बच्चों के भीतर थोड़ी-सी फुसफुसाहट शुरू हो गई। पृथ्वी के गोल होने को लेकर उनके भीतर पहले से ही कुछ सन्देह और सवाल थे जो पृथ्वी को ग्लोब जैसा कहे जाने पर फिर से कुलबुलाने लगे। उन्हें कुछ-कुछ उलझन जैसी महसूस होने लगी। दिशाओं को लेकर अब तक उनकी जो थोड़ी-बहुत समझ नक्शे और अपने आसपास को देखकर बनी थी, वह भी कुछ उलझ-सी गई। नक्शे के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण और ग्लोब के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में तालमेल बिठाने में समस्या खड़ी होने लगी। मुश्किल अवधारणाओं या तथ्यों को समझने-समझाने की वैसे भी अपनी कुछ मुश्किलें तो होती ही हैं। और कई बार उन्हें बहुत सरलीकृत या आसान बनाना सम्भव भी नहीं होता! ऐसे में ज़रूरी होता है, ऐसी दिक्कतों के हल तलाशना। सिर्फ रट लेने या किताब में लिखे एवं गुरुजी के बताए होने को मान लेने वाले आसान रास्ते से ज़्यादा बेहतर होता है, इस तरह की उलझनों से दो-चार होना।

ग्लोब को पहली बार देखने पर बच्चों में उत्सुकता, कुतूहल और रोमांच था। ग्लोब एवं नक्शे शाला विकास समिति के कोष से खरीदे गए थे। छोटा स्कूल होने से खर्च की भी सीमा थी, ऐसे में ज़्यादा बड़ा तो नहीं फिर भी ठीक-ठाक आकार का ग्लोब खरीदा गया। छोटे आकार के बावजूद वह बच्चों में कुतूहल पैदा कर रहा था। ज़ाहिर है कि वे ग्लोब पहली बार देख रहे थे!

"यो कँई हे?" आगे बैठी एक बच्ची ने मालवी में पूछा जिसका मतलब था कि 'यह क्या है?'

"नानी, इके ग्लोब के! यूँ समज कि ये हे हमारी पृथ्वी जि पे अपण सगळा

राँ!" मैंने मालवी में जवाब दिया। मेरे कहे का अर्थ था कि 'बेटी, इसे ग्लोब कहते हैं। यूँ समझो कि यह हमारी पृथ्वी है जिस पर हम सब रहते हैं!'

"ए ल्लो! पृथ्वी असी!!" (ये लो, पृथ्वी ऐसी!)

"हाँ नानी! असी ज!! थारा जसी गोल-मटोल।" (हाँ बेटी, ऐसी ही। तेरे जैसी गोल-मटोल।)

छठीं क्लास की वह बच्ची थोड़ी-सी गोल-मटोल थी। मेरा जवाब सुनकर शरमा गई। उसके बाद मैंने ग्लोब बच्चों को बारी-बारी से देखने के लिए दे दिया। इस हिदायत के साथ कि टूट-फूट न हो। बच्चे ग्लोब को बारी-बारी से देखते रहे। कुछ उसकी लिखावट भी पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। आपस में चर्चा कर रहे थे। मैं उनके चेहरों पर आते-जाते भाव देख रहा था। उनके बीच हो रही चर्चा को सुनने की कोशिश कर रहा था। आधे घण्टे बाद ग्लोब पूरी कक्षा में घूमकर वापस मेरी मेज़ पर आ गया।

"तम कँई सई में की रिया हो कि अपणी प्रिथवी असीज गोल है?" (क्या आप सही में कह रहे हैं कि अपनी पृथ्वी ऐसी ही गोल है?) एक लड़के ने पूछा। वह नज़दीक के गाँव, अनखेली से आता था।

"बिलकुल!"

"तमारे केसे मालम?" (आपको कैसे मालूम?)

अब जवाब मुझे देना था। मुझे कैसे मालूम! इसका एक सीधा-सा जवाब तो यह हो सकता था कि मुझे मेरे गुरुजी ने यह बताया था। या कि ऐसा किताबों में लिखा है। और यह एक तरह से माकूल जवाब ही होता। जिस पर जिरह की गुंजाइश बच्चों की तरफ से नहीं होती या बहुत कम हुआ करती है। बहरहाल, मैंने इस सिलसिले में अक्सर दिए जाने वाले प्रमाण दोहरा दिए। जैसे, समुद्र में दूर से आते जहाज़ का पहले ऊपरी सिरा दिखाई देता है, फिर धीरे-धीरे पूरा जहाज़। और यह भी कि अन्तरिक्ष से देखे जाने पर पृथ्वी गोल नज़र आती है। ऐसी और भी बातें। यही पहले भी किया था।

यहाँ तक पहुँचने के बाद हालाँकि उस वक्त मैं खुद अपने जवाब से ज़्यादा सन्तुष्ट नहीं था और मानकर चल रहा था कि बच्चे भी शायद नहीं होंगे। गनीमत थी कि ठीक तभी पीरियड खत्म होने का ठोका लग गया था।

अगले दिन मुझे साक्षरता अभियान के सिलसिले में बाहर जाना पड़ा। बाद के दो दिन छुट्टी पड़ गई। इस तरह जब चौथे दिन ग्लोब लेकर कक्षा में गया तब चार दिन पीछे छूटे, टूटे सूत्र तलाशने-जोड़ने पड़े। प्रश्न ग्लोब को लेकर बच्चों की जिज्ञासा के उस स्तर को फिर से हासिल करने का भी था। मनःस्थिति का भी! आम तौर पर उस माहौल को दोबारा

हासिल करना थोड़ा-सा मुश्किल होता है। खासकर, छोटे बच्चों के मामले में। शिक्षक भी एकदम से उसी मनःस्थिति में नहीं पहुँच पाता। हवा के झोंकों की तरह ये चीज़ें दिमाग से गुज़र जाती हैं। उन्हें फिर से छूटे हुए बिन्दु पर लाना आसान नहीं रहता।

परन्तु वो दिन थोड़ा अलग रहा। और ऐसा शायद ग्लोब की वजह से हुआ। ग्लोब को देखते ही बच्चे फौरन तीन दिन पहले की मानसिक स्थिति में लौट गए। इससे मेरे लिए आसानी हो गई। मुझे अपनी ओर से अलग से कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा।

सवालों की मूसलाधार

लेकिन यह भी हुआ कि मैं एकदम से एकसाथ बहुत सारे सवालों से घिर गया। ज़ाहिर है, सारे सवाल ग्लोब के सिलसिले में ही थे।

मसलन, ग्लोब तो पेडस्टल पर टिका है, पृथ्वी किस चीज़ पर टिकी है? और वह चीज़ किस पर रखी है? क्या पृथ्वी नंदी के सींग या शेषनाग के फन पर नहीं रखी है? यह अक्ष क्या चीज़ है? क्या ग्लोब की तरह पृथ्वी को थामने के लिए भी ऐसी कोई कील है? अगर है तो ऐसी कील कहाँ बनाई गई होगी? किसने बनाई होगी?

ग्लोब अन्दर से पोला है या भरा हुआ है? पृथ्वी तो भरी हुई है। इसे अगर एक तरफ से छेदा जाए तो क्या उसी तरह से दूसरी तरफ निकला जा सकता है जैसे कि ग्लोब के अन्दर से निकला जा सकता है?

पृथ्वी के समुद्रों का पानी नीचे क्यों नहीं गिर जाता? हम भी क्यों नहीं गिर जाते?

ग्लोब को तो हम घुमाते हैं, पृथ्वी को कौन घुमाता है? पृथ्वी घूमती क्यों है? और पश्चिम से पूर्व की ओर ही क्यों घूमती है? पूर्व से पश्चिम क्यों नहीं घूमती? पृथ्वी कब तक घूमेगी? कब से घूम रही है?

इस तरह के और भी सवाल। बहुत सारे सवाल। इतने सारे और एकसाथ कि शोर में तब्दील हो गए। सवालों का शोर। मैं पसीना-पसीना हो गया था। घिरा हुआ। बुरी तरह। बच्चे न सिर्फ बन्दूक की तरह मेरी तरफ सवाल ताने हुए थे बल्कि आपस में भी गुत्थम-गुत्था थे। सवालों के बीच वे सवालों की शक्ल में ही एक तरह से जवाब भी बना रहे थे।

मैं चुप था। असल में, तय नहीं कर पा रहा था कि एकसाथ इतने सारे सवालों का क्या करूँ! मेरी क्लास का शोर सुनकर बगल में क्लास ले रहे सूर्याजी एक बार झाँक गए कि क्या मैं क्लास में नहीं हूँ! उन्हें मेरी क्लास के शोर से पढ़ाने में दिक्कत हो रही होगी। वे *बाल-विज्ञान* के साथ-साथ गणित भी पढ़ाते थे, और बगल की आठवीं क्लास में उस वक्त गणित ही पढ़ा रहे थे। बहरहाल, सबसे पहले मुझे बच्चों को चुप कराना पड़ा, जो ज़ाहिर है कि मुश्किल था। वे अपने

ही किए प्रश्नों के अँधेरे-उजाले में झिलमिला रहे थे। मेरे लिए एकसाथ उतने सारे प्रश्नों के जवाब देना कतई आसान नहीं था। आसान हो भी नहीं सकता था। खासकर ऐसे जवाब जो उन्हें पूरी तरह सन्तुष्ट कर सकें! मेरे खयाल से ऐसा कम ही सम्भव हो पाता है कि बच्चे शिक्षक की ओर से मिले जवाब से पूरी तरह से सन्तुष्ट हो जाएँ! बच्चों की जिज्ञासाएँ अन्तहीन होती हैं और समस्त कोशिशों के बावजूद शिक्षक की क्षमता सीमित।

मेरे सामने दो समस्याएँ थीं। पहली, सवाल कई सारे थे और विभिन्न तरह के थे। और दूसरी, उनमें कोई सिलसिला या क्रम नहीं था। बच्चों की जिज्ञासा उफान पर थी। मेरी परेशानी चरम पर। उस दिन भी मुझे अपनी परेशानी से तात्कालिक लेकिन अस्थाई छुटकारा स्कूल के भृत्य मानसिंहजी ने पीरियड खत्म होने की सूचना देने वाला ठोका लगाकर दिलवा दिया। मुझे थोड़ी राहत महसूस हुई। काम थोड़ा आसान हुआ। हालाँकि, बच्चे अपने सवालों के जवाब हासिल किए बिना मुझे क्लास से जाने देना नहीं चाहते थे और लगभग घेराव पर आमादा थे। मुझे अगली क्लास लेनी थी और इस क्लास में सूर्याजी का गणित का पीरियड था। सो, अगले दिन के पक्के वादे पर मैं क्लास से निकल पाया। इस तरह उस दिन तो एक तरह से बच गया लेकिन जानता था कि अगले दिन नहीं बचने वाला!

बहरहाल, उस दिन घर आने के बाद भी उन सवालों पर सोचता रहा। दिक्कत यह थी कि अपने जवाबों से बड़ों को तो सन्तुष्ट किया जा सकता था, उन्हें बात समझाई जा सकती थी लेकिन बच्चों के साथ यह सब आसान नहीं था। मुद्दा सिर्फ जवाब देने का ही नहीं बल्कि बच्चों की सही समझ बनाने का भी था। जवाब तो दिए जा सकते थे। किताबी, काम-चलाऊ या शास्त्रीय किस्म के। जैसे कि आम तौर पर दे दिए जाते हैं। बच्चे सुन लेते हैं। कक्षा के पारम्परिक किस्म के कथित अनुशासन के चलते मान भी लेते हैं। लेकिन उनके चेहरे व्यक्त कर देते हैं कि वे बात समझे नहीं हैं। पढ़ाने के दौरान मुझे इस स्थिति का सामना करना पड़ा है। कई बार हुआ है ऐसा कि मैंने कहा और बच्चों ने मान लिया, बावजूद इसके कि समझ में नहीं आया। सो, मैं सोचता रहा कि उन सवालों के या उनमें से कुछ चुने हुए सवालों के जवाब किस तरह आसान ढँग से दिए जाएँ कि बच्चों को पूरी तरह से भले ही न सही, कुछ हद तक तो तसल्ली हो सके! इसमें मैंने अपने बेटे की मदद ली या एक तरह से उसे माध्यम बनाया। बेटा उसी क्लास में था, लेकिन मानकुण्ड नहीं अरलावदा स्कूल में पढ़ता था जहाँ सामाजिक अध्ययन का यही कार्यक्रम चल रहा था। मैं काफी देर

तक क्लास में उठाए गए सवालों को केन्द्र में रखकर उससे बात करता रहा। और जानने-समझने की कोशिश करता रहा कि उसके भीतर इन सब चीज़ों को लेकर क्या चल रहा है और वह क्या सोच रहा है। उससे बात करने के बाद मुझे अपने लिए थोड़ी-सी रोशनी नज़र आई।

अगले दिन क्लास में जाने में मुझे थोड़ी देर हो गई। असल में, एक पालक मिलने आ गए थे। उनका बच्चा अपने मामा के यहाँ गए होने से कुछ दिनों से स्कूल नहीं आ पा रहा था। वे उसकी छुट्टी के सिलसिले में बात करने आए थे। मैं उनसे बात कर ही रहा था कि क्लास के तीन-चार बच्चे ऑफिस के दरवाज़े पर आकर खड़े हो गए। सबसे आगे अन्नी थी। अन्नी मतलब अनीता! तालुड़ी! मैं तालुड़ी कहता था। तालुड़ी मतलब गिलहरी। जितनी छोटी-सी थी, उतना ही तेज़ और ज़ोर-से बोलती थी। क्लास में भी! क्लास में सबसे ज़्यादा वही बोलती थी। लगभग डाँटने या झगड़ने के अन्दाज़ में! मालवी में।

"चलो नी! कितनी बेला करोगा!" वही दनदनाई। उसके स्वर में बाकी बच्चों के स्वर भी शामिल थे। सामूहिक डाँट-भरा आग्रह या चेतावनी।

मैं समझ गया था कि मेरी शामत आ चुकी है। मैं बच्चों के पीछे-पीछे क्लास में पहुँच गया। बच्चे मानसिंहजी से ग्लोब लेकर टेबल पर रख चुके थे। क्लास में हल्का-सा शोर था।

"तमने तो आज देर करी दी!" यह पास के गाँव से आने वाला रतन था। मैंने बिना जवाब दिए क्लास पर नज़र डाली। तकरीबन सारे चेहरों पर पिछले दिन के सवाल टँगे थे।

"तम कँइ बतइ रिया था, बताओ नी!" फिर से वही तालुड़ी। एक तरह से रिवॉल्वर ताने हुए। मैंने एक बार जानने की कोशिश की कि क्या बच्चे सच में पिछले दिन के सवालों पर ही अटके हैं या यूँ ही हंगामा मचाए हुए हैं! पाया कि वे वाकई उन सवालों के जवाब जानना चाहते हैं। मैंने घड़ी देखी। मेरे पास अपने पीरियड के 30 मिनट बचे थे, और मुझे इसमें उन सवालों से जूझना था। इतना तय हो चुका था कि अब मैं वह सब नहीं पढ़ा सकता था जो उस दिन के लिए सोचकर रखा था।

ऊपरवाला ही ज़िम्मेदार!

पहले मैंने पिछले दिन के तमाम सवालों को बच्चों से ही पूछ-पूछकर सिलसिलेवार बोर्ड पर लिखा। एक जैसे सवालों को छोड़ दिया। बोर्ड पर लिखे सवालों को देख-पढ़कर बच्चे आश्वस्त थे कि उनके लगभग सभी सवाल शामिल हो चुके हैं। उसके बाद बच्चों से ही जवाब निकलवाने की कोशिश की। वे उन सवालों के बारे में क्या सोचते हैं? उन्हें क्या लगता है? वगैरह। उनके सोचने या जवाब में एक चीज़ बार-बार आ रही थी – ईश्वर, भगवान! हर मुश्किल

सवाल का जवाब देने या ढूँढने का यह सबसे आसान तरीका था। सवाल को ईश्वर, भगवान या ऐसी ही किसी सत्ता के मत्थे मार देना! जो हज़ारों साल पुरानी पद्धति भी थी। हर मुश्किल, समझ में न आ पाने वाली चीज़ के पीछे किसी पारलौकिक सत्ता की मौजूदगी देखना या मानना! बेचारा 'ईश्वर' हज़ारों सालों से ऐसे न जाने कितने अनगिनत सवालों और ज़िम्मेदारियों का बोझ ढोने की बेगार करता आ रहा था! बच्चे भी उस वक्त अपने जवाबों में उन सवालों के लिए 'ईश्वर' को ज़िम्मेदार ठहरा रहे थे।

पृथ्वी किसने बनाई?
भगवान ने!

पृथ्वी कैसे घूमती है?
भगवान घुमाते हैं।

पृथ्वी अगर गोल है, तो समुद्रों का सारा पानी गिर क्यों नहीं जाता?
भगवान नहीं गिरने देते।

पृथ्वी आकाश में किसके सहारे टिकी है?
भगवान के।

मतलब सारे काम बेचारे भगवान के ज़िम्मे थे। मेरा काम भगवान ने आसान कर दिया था।

"बस, हो गई न तसल्ली!" मैंने कहा और बोर्ड से हटकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। बैठने के बाद एक बार बोर्ड पर नज़र डाली। बोर्ड पर भगवान ही भगवान थे। कई तरह के काम या ज़िम्मेदारियाँ पूरी करते हुए। मुझे भगवान पर उस वक्त थोड़ी-सी दया भी आई। लगा कि यह कुछ ज़्यादा ही हो रहा है। ज़्यादती जैसा। भगवान बेचारा अगर इतने आलतू-फालतू काम करता रहेगा तो फिर अपने हिस्से के ज़रूरी काम कब करेगा!

समझने का एक प्रयास

बच्चों के बीच खुसुर-फुसुर शुरू हो गई। अपने ही पूछे सवालों के जवाब एक तरह से उन्होंने ही दे तो दिए थे लेकिन बात कुछ बनती नहीं लग रही थी। आदिम मनुष्य को भी नहीं लगी होगी। तभी उसने भगवान को थोड़ा-सा एक तरफ कर अलग से सोचने-जानने की कोशिश की होगी।

"तम बी तो बताओ कँई!" (आप भी तो कुछ बताइए!)

"अबे हूँ कइँ बताऊँ!" (अब मैं क्या बताऊँ!)

"नी, तम बी बताओ!" यह एक सामूहिक आवाज़ थी। मुझे लगा कि मुझे भगवान के बगल में खड़ा कर दिया गया। लेकिन वहाँ जगह बहुत कम थी। मुश्किल से एक पाँव रखने जितनी! मैं समझ गया कि मुझे अब भगवान को ही थोड़ा इधर-उधर सरकाकर अपने लिए जगह बनानी पड़ेगी। बोर्ड पर लिखे जवाब इसमें मेरी कोई मदद नहीं कर रहे थे। मैंने सौर-मण्डल से अपनी छोटी-सी शुरुआत की। ग्रहों-उपग्रहों की उत्पत्ति के बारे में बताया। ग्रहों का सूर्य के

चक्कर लगाने के बारे में बताया। उन्होंने अपनी पिछली क्लास में नील आर्मस्ट्रॉंग के चन्द्रमा पर उतरने और वहाँ से चित्र भेजने के बारे में पढ़ा था, उसकी याद दिलाई। और फिर गुरुत्व बल पर आया।

मुझे लगा कि इतने सब के बाद बात शुरू करने और समझाने का आधार बन सकता है। पृथ्वी से पानी के नीचे न गिर जाने या मनुष्य सहित सारे जीव-जन्तु वगैरह के न गिरने के जवाब के लिए इतना बताया जाना ज़रूरी था। बच्चों का सवाल भी यही था कि अगर पृथ्वी ग्लोब जैसी है तो उस पर का पानी या हम या हमारी बाकी चीज़ें 'नीचे' गिर क्यों नहीं जातीं! उनका यह 'नीचे' बहुत साफ था। उन्हें यह समझाना थोड़ा मुश्किल था कि आकाश में उस तरह का ऊपर-नीचे वगैरह कुछ होता नहीं है।

बहरहाल, ग्लोब जैसी गोल पृथ्वी पर से किसी चीज़ के न 'गिरने' के लिए गुरुत्व बल के बारे में बताना पड़ा। हालाँकि, उस समय गुरुत्व बल जैसी चीज़ अपने-आप में एक बड़ा झमेला थी। बकौल किताबी किस्सा, न्यूटन ने तो अपने बगीचे के पेड़ से सेब के गिरने से गुरुत्व बल के सिद्धान्त का पता लगा लिया लेकिन मेरे लिए यह उस वक्त आसान नहीं था। मैंने कुछ चीज़ें हाथ से छोड़कर दिखाईं जो स्वाभाविक रूप से नीचे ही गिरीं। बच्चों ने इतना जान रखा था कि पृथ्वी अपनी ओर खींचती है इसलिए ऐसा होता है। अगर नहीं खींच रही होती तो गिरने वाली चीज़ नीचे नहीं आती – ऊपर की ओर आसमान में चली जाती! इतना ही नहीं, हम सब, और हमारा सब माल-असबाब आसमान (अन्तरिक्ष) में तैर रहे होते।

"तम और तमारी साइकिल बी!" ये फिर तालुड़ी थी। उसे मेरी साइकिल से काफी चिढ़ थी। क्योंकि लगभग हर दिन आठवीं क्लास में पढ़ने वाले उसके बड़े भाई को स्कूल छूटने के पहले राधेश्याम भैया की साइकिल दुकान से उसके पिछले पहिए में हवा भरकर लानी पड़ती थी। यह दुकान स्कूल गेट के पास थी। साइकिल काफी पुरानी थी। सेकंड हैंड। जिसे मेरा छोटा भाई सेन्धवा से मेरे लिए खरीदकर लाया था। *एकलव्य* के साथी अरविन्द सरदाना इसे सर्कस की साइकिल कहते थे। तालुड़ी ने इसी साइकिल के बारे में पूछा था।

"हो नानी, हूँ नी म्हारी साइकिल भी आकास में उड़ती।" (हाँ बेटी, मैं और मेरी साइकिल भी आकाश में उड़ती।)

"तबे तम उके केसा पकड़ता?" (तब आप उसे कैसे पकड़ते?)

"थारा दादा के केतो पकड़कर लाना की।" (तुम्हारे भाई से कहता पकड़कर लाने को!)

"येल्लो।"

बहरहाल, इसी गुरुत्व बल के

ज़रिए मुझे पृथ्वी और अन्य ग्रहों के आसमान में अलग-अलग दूरियों पर होने और सूर्य का चक्कर लगाने वगैरह जैसी बातें समझाने की कोशिश करनी पड़ी। तालुड़ी समेत अन्य कई बच्चों को यह समझा पाना मुश्किल हो रहा था कि पृथ्वी जैसी इतनी 'बड़ी जंगी' चीज़ सिर्फ ऐसे ही किसी बल के कारण आसमान में टिकी रह सकती है! वे गहरे अविश्वास में थे। और मेरी बगल में खड़े भगवान को फिर से बीच में लाना चाह रहे थे। और यह मेरी सीमा थी। जो कि आ चुकी थी। मेरे पास उनके सन्देह या जिज्ञासा का समाधान करने के लिए कुछ खास नहीं बचा था। मुझे लगता है, बहुत ठोस तथ्यों की भी अवधारणात्मक समझ बना पाना बच्चों के लिए छोटी क्लासों में आसान नहीं होता। बिलकुल नज़दीक की चीज़ें तो वे आसानी-से समझ लेते हैं। लेकिन बहुत दूर और समय के लम्बे अन्तराल में फैली हुई चीज़ों को नहीं!

ग्लोब ने बच्चों की समझ बनाने में काफी मदद की। आगे चलकर वे खुद ही मेरी पहले बताई बात समझ पाए कि कोलम्बस पृथ्वी के गोल होने की जानकारी होने के बाद, अगर अपने जहाज़ लेकर पश्चिम की ओर यह सोचकर चला कि किसी दिन पूर्व में स्थित भारत पहुँच जाएगा तो वह कितना सही था! और कि जापान से अमेरिका जाने के लिए सबसे छोटा रास्ता पूर्व की तरफ प्रशान्त महासागर पार करके जाने वाला है न कि पूरे एशिया, यूरोप महाद्वीप और अटलांटिक महासागर पार करके जाने वाला! ऐसे कई स्थितिगत तथ्य समझने-समझाने में ग्लोब ज़बरदस्त मददगार रहा। समतल कागज़ पर बना विश्व का नक्शा देखकर ऐसे तथ्य ठीक से स्पष्ट नहीं हो पाते थे। शुरू-शुरू में तो बच्चे विश्व के नक्शे में पूर्वी या पश्चिमी किनारे पर पहुँचकर यही समझते थे कि वहाँ दुनिया खत्म हो जाती है। उसके आगे जाएँगे तो गिर पड़ेंगे! दरअसल, ये कुछ आदिम किस्म के भय थे। सही जानकारियों के अभाव में पैदा होने वाले भय! सभ्यता के विकास-क्रम में मनुष्य के साथ ऐसे बहुत सारे आदिम भय जानकारियों के अभाव में चलते रहे हैं। चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण का कारण राहू-केतु को मानने वाले बहुत सारे लोग आज भी मिलते हैं। वे ग्रहण के दौरान घर में रखा पानी नहीं पीते। ग्लोब देखकर बच्चों की कई भ्रान्तियाँ दूर हो पाईं।

ग्लोब और उस पर बने देशों को बार-बार देखते रहने से पृथ्वी के गोल होने की बात को लेकर उनके आश्चर्य और अविश्वास कम हो गए। और इसके बाद वे इस तथ्य के साथ काफी-कुछ सहज हो गए।

अपने पढ़ाने के काम के दौरान मुझे यह बराबर लगता रहा कि बच्चों के भीतर किसी भी विषय के कुछ

बुनियादी तथ्य साफ हो जाने चाहिए। इससे आगे की चीज़ें समझने में उन्हें थोड़ी-सी आसानी रहती है। हालाँकि, इसके चलते उनके भीतर की कुछ बालसुलभ खास तरह की फैंटसियाँ खत्म हो जाने का खतरा भी रहता है। अब यह बहस का अलग विषय हो सकता है कि फैंटसियाँ खत्म हो जाने के बाद बच्चों के सीखने का आनन्द भी प्रभावित होता है या नहीं!

एक मुश्किल प्रयोग

सो, बच्चों ने ग्लोब के ज़रिए पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुका होना, अक्ष पर घूमना और इस घूमने से दिन-रात का होना तो जाना ही, इसके अलावा ऋतु परिवर्तन को भी थोड़ा-बहुत समझा। ऋतु परिवर्तन दो कारणों से होता है। पहला कारण, पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुका होना और दूसरा, पृथ्वी का अण्डाकार पथ पर सूर्य के चारों तरफ घूमना! इन दो चीज़ों के ज़रिए ऋतु परिवर्तन समझाया जा सकता था।

ज़ाहिर है, यह थोड़ा-सा मुश्किल प्रयोग था। इसके लिए कक्षा के कमरे में काफी बदलाव करना पड़ा। चारों खिड़कियाँ जिनमें पल्ले नहीं थे,

चित्र: हिमांशी मोने

चित्र-2

चादरों से ढँकनी पड़ीं। बच्चों को अपनी जगह से उठाकर दीवार के सहारे गोल घेरे में खड़ा करना पड़ा। एक बच्चा अपने घर से बड़ी किसान टॉर्च ले आया था।

दिन और रात होने की प्रक्रिया समझाने के लिए पहले भी किसान टॉर्च मँगवाई गई थी। खिड़कियाँ तब भी चादरों से ढाँकी गई थीं। और फिर टॉर्च को एक जगह स्थिर रखकर उसके सामने एक निश्चित दूरी पर ग्लोब रखकर उसे घुमाते हुए दिन और रात का होना समझाया गया था। वह थोड़ा आसान प्रयोग था। उसमें टॉर्च (सूर्य) और ग्लोब (पृथ्वी) दोनों को एक जगह स्थिर रखा गया था। सिर्फ ग्लोब को अपनी धुरी पर घुमाया गया था।

लेकिन इस प्रयोग में टॉर्च को अपनी जगह घुमाना था और ग्लोब को भी हाथ में लेकर टॉर्च के इर्दगिर्द इस सावधानी के साथ घूमना था कि अक्ष पर झुके होने की स्थिति में परिवर्तन न हो! इसी सबमें सूर्य की सीधी या तिरछी पड़ने वाली किरणों पर ध्यान केन्द्रित करवाना था। इतने सबके बीच ऋतुओं में होने वाले परिवर्तन को दिखाना-समझाना था। कुल मिलाकर, प्रयोग काफी कठिन और उलझन-भरा था। यह भी डर था कि इतनी सारी कसरत के बाद भी जो कुछ दिखाना-समझाना चाह रहा हूँ, वह अगर न दिखा-समझा पाया तो!

प्रयोग करवाने के पहले मुझे अपने आपको मानसिक रूप से तैयार करना पड़ा। एकाध बार तो प्रयोग छोड़ देने का भी मन हुआ। लग नहीं रहा था कि प्रयोग ठीक से हो पाएगा। लेकिन हो गया। यह तो नहीं कह सकता कि बच्चे प्रयोग पूरी तरह से समझ गए। फिर भी ऋतु परिवर्तन को लेकर कुछेक ज़रूरी चीज़ें तो उनके सामने साफ हो ही गईं। बहरहाल, ग्लोब के साथ यह मेरी पहली मुश्किल गतिविधि थी जिसके ज़रिए बच्चों के साथ-साथ मैंने भी बहुत कुछ जाना-सीखा। पहली बार साफ हुआ कि अक्ष पर झुके होने और सूर्य का चक्कर लगाने से पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन किस तरह से होता है!

इस तरह ग्लोब अगली कक्षाओं में भी सामाजिक अध्ययन पढ़ते-पढ़ाते वक्त एक उपयोगी उपकरण बना रहा।

सिर्फ कर्क, भूमध्य और मकर

यहीं थोड़ा-सा रुककर नक्शों और ग्लोब पर खिंची आड़ी-तिरछी रेखाओं के सिलसिले में बात कर ली जाए – मतलब अक्षांश-देशान्तर रेखाएँ। जो नक्शों और ग्लोब पर तो दिखाई देती हैं, लेकिन असल में पृथ्वी पर कहीं नहीं होतीं। यह अजीब तिलिस्म था। रेखाएँ थीं भी और नहीं भी थीं! ज़ाहिर है, यह काफी उलझन-भरा मामला था। लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि इनका समावेश पाँचवीं के

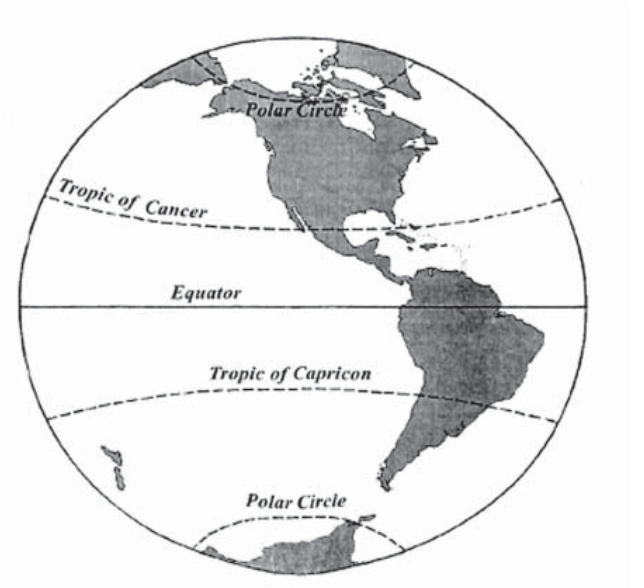

चित्र-3: *कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'पृथ्वी और ग्लोब' का एक चित्र।*

भूगोल में ही कर दिया गया था। प्रचलित सामाजिक अध्ययन में भी इनके बारे में विस्तार से बताया गया था।

लेकिन इस नवाचारी सामाजिक अध्ययन में इन्हें शामिल नहीं किया गया। न ध्रुवों पर मिलने वाली खड़ी देशान्तर रेखाओं को और न एक-दूसरे के समान्तर खींची गई कभी न मिलने वाली आड़ी अक्षांश रेखाओं को! सिर्फ तीन प्रमुख रेखाओं के बारे में विस्तार से चर्चा की गई थी – शून्य अक्षांश अर्थात् भूमध्य रेखा, साढ़े तेईस उत्तरी अक्षांश मतलब कर्क और साढ़े तेईस दक्षिण यानी मकर रेखा। सामाजिक अध्ययन पढ़ने-पढ़ाने में इन रेखाओं का अपना विशेष महत्व रहा है। इनके बारे में बताने के पहले यह बात खास तौर से ज़ोर देकर साफ करनी पड़ी कि ऐसी रेखाएँ धरती पर असल में कहीं भी नहीं हैं। ये पूरी तरह से काल्पनिक रेखाएँ हैं जो सिर्फ नक्शों और ग्लोब पर दर्शाई जाती हैं।

छठीं कक्षा में इन तीनों महत्वपूर्ण रेखाओं की जानकारी दी गई थी। इससे मेरे लिए एक और रोचक गतिविधि की गुंजाइश निकल आई। बच्चों ने अपनी कॉपी में तालिका बनाकर उसमें दर्ज़ किया था कि

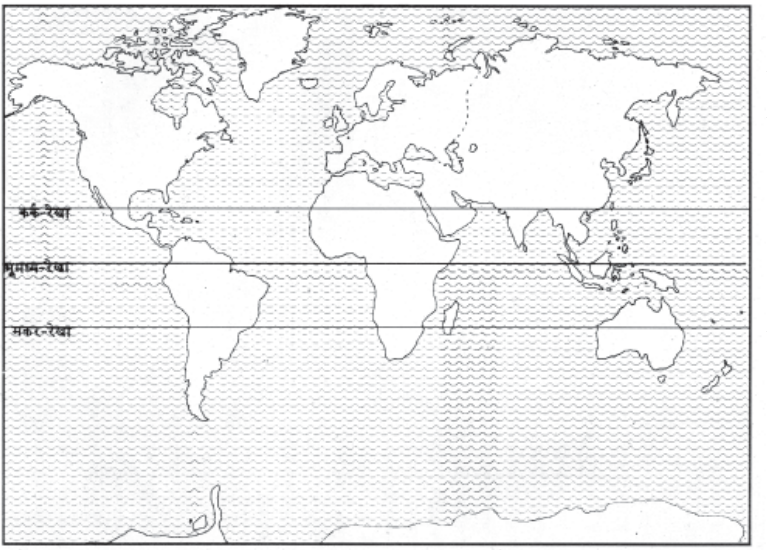

चित्र-4: *कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'पृथ्वी और ग्लोब' का एक नक्शा।*

किन महाद्वीपों से तीनों रेखाएँ गुज़रती हैं, किनसे दो रेखाएँ गुज़रती हैं और किनसे एक ही रेखा गुज़रती है और किनसे एक भी रेखा नहीं गुज़रती! इसके आगे और भी गतिविधियाँ विकसित होती गईं। कर्क रेखा पर एशिया के कौन-कौन से देश हैं? भूमध्य रेखा एशिया महाद्वीप की किस दिशा से गुज़रती है? वगैरह। हालाँकि, ये सब स्थितिमूलक गतिविधियाँ थीं लेकिन इनके कारण अगली कक्षाओं में बच्चों को काफी सहूलियत हो गई।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम, कक्षा-6 से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।